आदिवासी संस्कृति पर मुख्यधारा संस्कृति का प्रभाव

अभिषेक कुमार मीना
शोधार्थी
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय

भारत अपनी आजादी के पचहत्तर वर्ष पूरे कर चुका है इस उपलक्ष्य में सरकारी तौर पर स्वतंत्रता के "अमृत महोत्सव" का आयोजन पूरे उत्साह के साथ संपूर्ण भारतवर्ष में किया जा रहा है। एक लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य होने के कारण देश की सभी इकाइयों को जाति, धर्म,वर्ग,वर्ण और नस्ल के तहखानों से बाहर निकल कर सामाजिक,धार्मिक,आर्थिक/ राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर समानता स्वतंत्रता व बंधुत्व की भावना को एंटरटेन करने का पूरा अधिकार है। आज स्वतंत्रता के पचहत्तर वर्षों बाद भी हम देश के एक ऐसे समूह के बारे में बात करने जा रहे हैं जिसे संविधान में अनुसूचित जनजाति के नाम से वर्गीकृत किया गया है। अनुसूचित जनजाति एक संवैधानिक शब्द है जिसके माध्यम से सरकारी योजनाओं और अधिकारों को लक्षित किया जाता है। संविधान निर्माण के समय संविधान सभा में आदिवासी नेता जयपाल सिंह मुंडा ने अनुसूचित जनजाति के समानांतर आदिवासी पद के उपयोग पर जोर दिया। आदिवासी पद के संदर्भ मं आदिवासी चिंतक गंगा सहाय मीणा कहते हैं कि अनुसूचित जनजाति केवल आरक्षण या नौकरियों में हिस्सेदारी के संदर्भ में प्रासंगिक हो सकता है आदिवासी एकता और संघर्षो की परंपरा का बोध नहीं करा पाता।

आदिवासी शब्द उस चेतना का प्रतीक है जिसकी मदद से उन्होंने अपने दुख दर्द को समझा और जो उन्हें मुक्ति की राह में आगे बढ़ा रही है। आदिवासी पद में एक आंदोलन धर्मिता है जो जनजाति में नहीं है

भारत के औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के संघर्ष में जितनी भागीदारी गैर आदिवासी समाजों की थी उतनी ही भागीदारी इस देश के आदिवासी समुदायों की भी थी। राष्ट्र के सांस्कृतिक रचना में इन आदिवासियों का केवल योगदान ही नहीं अपितु मातृभूमि की रक्षा में इनका सर्वस्व त्याग भी बहुत बड़ा है। अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध विद्रोह करके मातृभूमि को दासता से मुक्त करने के लिए बिरसा मुंडा, सिद्धू कानू , तिलका मांझी जैसे आदिवासी वीरों ने अपनी जान दे दी।

औपनिवेशिक दासता से मुक्ति का संघर्ष समूचे भारतवर्ष का था जिसमें देश के हर वर्ग व वर्ण के लोग शामिल थे लेकिन ऐसा क्या हुआ कि देश के अन्य वर्गों ने जितनी तेजी से विकास किया उतनी तेजी से आदिवासी समाज में विकास नहीं हो सका। 20।1 की जनगणना के अनुसार देश की कुल आबादी में अनुसूचित जनजातियों का हिस्सा 8.6% यानी 10.45 करोड़ है। अनुसूचित: जनजातियो की आबादी का लगभग 92% हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। यह जनजातियां पूरे देश में बड़े पैमाने पर वन और पहाड़ी इलाकों में फैली हुई हैं संविधान में इन जनजातियाँ के विकास व संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 15 [4],16[4],275[1],330,332,325,340, व 342 के साथ साथ अनुसूची 5 व अनुसूची 6 में इनके अधिकारों व हितों को ध्यान में रखते हुए संवैधानिक संरक्षण दिया गया है। लेकिन इतने सारे संबैधानिक प्रावधान होते हुए भी एक आंकड़े के अनुसार पिछले 50 सालों मैं 2.5 करोड़ लोग विस्थापित हुए जिनमें 90 लाख: आदिवासी हैं। विभिन्न किस्म की : आपदाओं, अभाव, अंतर जनजातीय संघर्षों और अदालत के आदेशों की वजह से बताया जा रहा | है कि फिलहाल 10 लाख से अधिक लोगों के सिर पर विस्थापन का खतरा मंडरा रहा है वे अपने ही देश में लगातार शरणार्थी बन रहे हैं।

औपनिवेशिक सत्ता की समाप्ति और देश का स्वतंत्र होना आदिवासी समाज के लिए भी उत्साहजनक था। अन्य देशवासियों की तरह: आदिवासियों ने भी सोचा अंग्रेजों के जाने के बाद अबुआ दिसुम, अबुआ राज (हमारा देश हमारा राज) आएगा लेकिन इस देश की संसद और बुद्धिजीवियों के पास वह दृष्टि व संवेदनशील इच्छाशक्ति नहीं थी कि आदिवासियों के हितों को आगे बढ़ाने वाले संवैधानिक प्रावधानों को लागू करते। आजादी के बाद देश की बागडोर जिन हाथों मैं सौंपी गई वे लोग पूंजीवादी व साम्राज्यवादी सांचे में ढले लोग थे। स्वतंत्र भारत का पूरा प्रशासनिक ढांचा औपनिवेशिक संस्कारों और नीतियों से ग्रसित था। उनकी नजरों में यह आदिवासी लोग नंग धड़ंग, अशिक्षित ,गंवार, कुपोषित ,जंगली और भोले-भाले ही लगे। यही कारण है कि आजादी के 75 वर्षों बाद भी आदिवासी अपने हक अधिकार के लिए उसी तरह संघर्ष कर रहे है जैसा संघर्ष अंग्रेजी शासन में करते थे।वर्तमान में आदिवासी समाज जिन क्षेत्रों में निवास करते हैं वे भौगोलिक क्षेत्र खनिज संपदा और प्राकृतिक संसाधनों से पूरे भारत में सबसे अधिक संपन्न है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक "झारखंड उड़ीसा, छत्तीसगढ़, बिहार राजस्थान के साथ-साथ पूर्वोत्तर भारत के असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम जैसे राज्य हैं जहां सबसे अधिक आदिवासी समाज के लोग रहते हैं। इन राज्यो में कोयला ,मैग्नीज ,तांबा, जस्ता, बॉक्साइट, यूरेनियम व पेट्रोलियम जैसे खनिज उत्पादन के भंडारण हैं। पीआईबी की वार्षिक आर्थिक रिपोर्ट 2022 के अनुसार उड़ीसा खनिज उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। उसके बाद छत्तीसगढ़, केरल ,राजस्थान ,झारखंड का नाम आता है।

वही छत्तीसगढ़ राज्य कोयला उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। वित्तीय वर्ष 2020-21 में छत्तीसगढ़ राज्य का लगभग 27% राजस्व खनिजों से प्राप्त हुआ है। कोयला उत्पादन में अग्रणी होने के कारण छत्तीसगढ़ बिजली उत्पादन का प्रमुख केंद्र है। भारत का पठार क्षेत्र उत्तर पूर्वी भारत जिसमें छोटानागपुर ,उड़ीसा का पठार, छत्तीसगढ़ के क्षेत्र शामिल है। लौह अयस्क, कोयला , बक्साइट व अभ्रक सहित अन्य खनिजों की एक विस्तृत श्रृंखला है। उत्तर पश्चिम में राजस्थान के धारवाड़ शैलो में कापर व जिंक की बहुलता है। राजस्थान बलुआ पत्थर, ग्रेनाइट, संगमरमर के साथ-साथ जिप्सम व अपने नमक के विशाल भंडार के लिए भी प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़ हीरा उत्पादन में शीर्ष राज्य हैं ।सबसे अधिक चांदी का उत्पादक राज्य राजस्थान है। मैग्नीज व तांबा में मध्य प्रदेश अग्रणी है। असम का डिब्रूगढ पेट्रोलियम पदार्थ का प्रमुख केंद्र है।

इतने सारे खनिज संपदा से संपन्न होने के बाद भी यह राज्य स्वास्थ्य ,शिक्षा और गरीबी के दर्द से कराह रहे हैं। विस्थापन और बेरोजगारी इन राज्यों की सबसे बड़ी समस्या है। राज्य स्वास्थ्य सूचकांक 2019-20 की रिपोर्ट में सबसे नीचे के पायदान पर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान राज्य शामिल है [दूसरी और बहुआयामी गरीबी सूचकांक के अनुसार बिहार, झारखंड, उत्तरप्रदेश देश के सबसे गरीब राज्यों के रूप में सामने आए हैं। मानव विकास सूचकांक जो स्वास्थ्य शिक्षा व आय को ध्यान में रखकर जारी किया जाता है, में सबसे खराब स्थिति बिहार :उत्तर प्रदेश,झारखंड व मध्य

प्रदेश की है ।केरल पहले स्थान पर है ।स्कूली शिक्षा गुणवत्ता सूचकांक जो नीति आयोग जारी करता है, में सबसे खराब स्थिति उतर प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, बिहार, झारखंड व मध्य प्रदेश है ।यहां तक की प्रति व्यक्ति आय के मामले में भी बिहार व उत्तर प्रदेश सबसे निचले पायदान पर हैं।

दुनिया की छठी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था का दर्जा भारत ने हासिल तो कर लिया है लेकिन आज भी देश का एक वर्ग ऐसा है जो हाशिए पर है। इस वर्ग के अंतर्गत वे आदिवासी आते हैं जो सुदूर इलाकों में अपना जीवन यापन कर रहे हैं और अनेक समस्याओं को झेल रहे हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार आदिवासी समाज का 80% से अधिक श्रमबत प्राथमिक क्षेत्र में कार्यरत है। उनकी साक्षरता दर औसत साक्षरता दर से 14% कम है। भारत की औसत जनसंख्या वृद्धि दर 17.7 की तुलना में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या वृद्धि दर 23.7% की दर से बढ़ रही । हालांकि लिंगानुपात के मामले में अनुसूचित जनजातियाँ की स्थिति सामान्य लिंगानुपात से बेहतर है।ऐसा नहीं है कि आदिवासी बहुलता वाले राज्य केवल खनिज संपदा से ही संपन्न नहीं है बल्कि प्राकृतिक संपदा से भी संपन्न है। 1865 के पूर्व भारत के आदिवासी समाज के अधीन देश के लगभग आधे जंगल ,जमीन का स्वामित्व था जो 1927 के भारतीय वन अधिनियम के लागू होते होते केवल 35% रह गया वनों के संरक्षण के नाम पर आदिवासियों को जंगलों से भगाया गया लेकिन 1988 में राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश मे कम से कम 35% भौगोलिक क्षेत्रफल पर वन होना चाहिए था परंतु 2021 के भारत वन सर्वेक्षण के अनुसार केवल 24.62 क्षेत्र पर ही उपस्थित हैं उसमें भी सबसे अधिक वन उन क्षेत्र मे है जहां आदिवासी जनसंख्या अधिक है।*
ऊपर दिए गए आंकड़ों के विश्लेषण से एक बात उभरकर सामने आती है कि खनिज व प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न होने के बाद भी वे राज्य जहां आदिवासी समाज अधिक संख्या में है शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार ,कुपोषण और विस्थापन जैसी समस्याओं से तुलनात्मक रूप से अधिक पीड़ित है। इन तथ्यों के मद्देनजर मेरा ध्यान आजादी के पूर्व भारत की दशा की ओर जाता है ।आज स्वतंत्र भारत की सरकार एवं प्रशासनिक महकमा पूंजीपतियों के सहयोग से इन प्रदेशों के साथ ठीक उसी प्रकार का व्यवहार कर रही है जैसा व्यवहार अंग्रेजों ने परतंत्र भारत के साथ किया था

अंग्रेजों के आने से पहले भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति ने उसकी अर्थव्यवस्था तथा भारत के साथ उसके आर्थिक संबंधों को पूरी तरह बदल कर रख दिया इसके कारण तीव्र आर्थिक विकास हुआ जो ब्रिटेन तथा यूरोप, सोवियत संघ.संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और जापान के उच्च जीवन स्तर का आधार है ।इस के संदर्भ में जो सुलीवन की टिप्पणी ध्यान देने लायक है "हमारी प्रणाली बहुत कुछ स्पेन की तरह काम करती है जो गंगा के तटो से सभी अच्छी चीजें सोकर टेम्स के तटों पर निचोड़ छोड़ देती है"।5 आजादी के बाद औपनिवेशिक शासकों द्वारा दिए गए प्रशिक्षण, ज्ञान व अनुभव से प्रभावित नया शासक वर्ग आदिवासियाँ के साथ भी वही औपनिवेशिक रवैया जारी रखें रहा विकास की परियोजनाओं के नाम पर उनके जंगलों को खाली कराया जाता रहा। बड़े-बड़े डैम, नदी घाटी परियोजनाओं तथा कल कारखाने , अभ्यारण आदि बनाने के लिए आदिवासियों की जमीनें (जो उनका घर था |अधिग्रहित की जाने लगी। झठे वादों और मुआवजे के नाम पर उनको ठगा गया |कल तक: जो जमीनों के मालिक थे अब वे नौकर बना दिए गए। चुनी हुई सरकारों का रवैया भी साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासकों की तरह रहा। आदिवासी बहुल इलाकों की जमीन हड़पने के लिए निर्वाचित सरकार व पूंजीपतियों ने मिलकर ऐसी आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक स्थितियां पैदा की जिसमें संसाधनों को हड़पने में सुविधा हो। आदिवासी अपने संरक्षण के लिए न्यायालयों की ओर गए लेकिन उन्हें निराशा ही हाथ लगी। यही कारण है कि आजादी के कुछ सालों बाद आदिवासी समाज का मोहमंग हो गया। 70 के दशक के आते-आते यह मोह भंग एक विद्रोह में बदल गया और 1967 में नक्सलबाड़ी की घटना घटित हुई। 1975 में आपातकाल भी लागू हुआ |इसी दौरान कई आदिवासी विस्थापन विरोधी आंदोलनों में जल ,जंगल और जमीन को लेकर विद्रोह पूरे उत्तर भारत और पूर्व भारत में फैल गया। उसको दबाने के लिए सरकारों ने सलवा जूडूम से लेकर ग्रीन हंट जैसी खूनी नरसंहार करके आदिवासी विद्रोह को दबा दिया। इसी उथल-पुथल के बीच हिंदी के प्रमुख कवि धूमिल लिखते हैं - एक ही संविधान के नीचे भूख से रिरियती हथेली का नाम दया है और भूख में तनी हुई मुट्ठी का नाम नक्सलबाड़ी है।6 90 के दशक के उदारवादी नीतियाँ ने नव साम्राज्यवादी युग के रास्ते को वैश्विक स्तर पर खोल दिया। इन नीतियाँ ने आदिवासी अस्मिता व अस्तित्व के ऊपर बड़े सवाल खड़े कर दिए। कथित विकास के नाम पर केवल जंगलों को ही नहीं उजाड़ा जा रहा है बल्कि पूरी आदिवासी सभ्यता व संस्कृति को कुचला जा रहा है। आजादी बाद के नीति निर्धारकों ने कभी यह समझा ही नहीं कि आदिवासी समाज का जंगलों से संबंध सहजीवी का है। इनके लिए कानून तो बनाए गए लेकिन कभी उनका पालन ईमानदारी से नहीं किया गया। सरकारें आत्मनिर्भर होने का और बनने का दावा हर दिन कर रही हैं लेकिन आदिवासी इलाकों में सड़कों ,इमारतों कारखानों माल जैसी तथाकथित विकास यह परियोजनाओं के निर्माण की जिम्मेदारी किसी वैश्विक कंपनी को दे देती हैं।संवैधानिक संरक्षण होने के बाद भी इस देश की संसद ने आदिवासियों के साथ सामंती व्यवहार बनाए रखा है। आदिवासी समाज को असभ्य, जंगली और पिछड़ा समझने का उनका पौराणिक औपनिवेशिक [ब्राह्मणवादी]इष्टिकोण आजादी के बाद खुलकर सामने आया है ।आदिवासियों के विस्थापन व विनाश के नींव पर खड़ी विकास की यात्रा ने इस देश के प्रथम: नागरिक के पूरी संस्कृति और सभ्यता को उखाड़ फेंका है। प्रकृति संरक्षण और बड़े-बड़े राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय आयोजनों की आड़ मे पूरी पृथ्वी के आदिवासी समुदायों को ठगा जा रहा है। एयरकंडीशन कमरों में बैठे लोग अपने घरों की छतों, बालकनी में गमले लगाकर एक ओर पर्यावरण बचाने की मुहिम चला रहे हैं तो वहीं दसरी ओर संसद में जंगलों को काटकर तथाकथित विकास की नई नई परियोजनाओं के लिए नीतियां बना रहें हैं। यही कारण है कि वह राज्य जो प्रकृति व खनिज संपदा से संपन्न है भुखमरी और गरीबी की स्थिति में है और इन राज्याँ से संसाधनों का दोहन कर महानगरों की रौनक बढ़ाई जा रही है।

वनोपज का अधिकार, जंगल पर, जमीन के अंदर खनिजों के अधिकारों आदि मुद्दों को जबरन समाधान के बदले विवादास्पद बनाया गया हैं और अधिकांश नियम कानून को व्यवसाय के हितों के अनुकूल बनाने की प्रक्रिया चलाई जाती है जिसके कारण आदिवासी भारत में: कहीं न कहीं आंदोलनरत रहते हैं।

एक लोकतांत्रिक राष्ट्र राज्य होने के नाते इस देश के सांसद और बुद्धिजीवियों की नैतिक जिम्मेदारी है कि देश के इतनी बड़ी आबादी के अधिकारों और हितों को ध्यान में रखकर कानून बनाएं ।अगर कारखाने ,बांध व डैम बनाने जरूरी है तो यह भी जरूरी है कि वहां से विस्थापित आदिवासी लोगों के शिक्षा ,स्वास्थ्य व जीवन यापन के लिए उचित मूलभूत आवश्यकताओं को मुहैया कराया जाए। विस्थापन और अवैध खनन से आदिवासियों की जमीनों को बचाना हम सब का

सामूहिक दायित्व है ,क्योंकि आदिवासियों का पर्यावरण से सहजीवी संबंध है जो पूरी मानवता व सृष्टि के लिए हितकर है। हाल के उत्तराखंड के चमोली जिले के जोशीमठ में होने वाली घटनाओं को देखकर हमें सीख लेने की जरुरत है। जितना जरूरी प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण है उतना ही जरूरी उन प्राकृतिक स्थलों पर रहने वाले लोगों के संरक्षण की भी जरूरत है क्योंकि ये प्राकृतिक स्थल उन्हीं लोगों की बदौलत सुरक्षित है।

****

संदर्भ –

1.गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, पृष्ट संख्या(22),अनन्य प्रकाशन, दिल्ली 2019
2.रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन,पृष्ट संख्या (25) रमणिका फाउंडेशन, 2018
3. कुरुक्षत्र/पत्रिका) पृष्ट संख्या 5,सितंबर 2022 सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
4. वागर्थ (पत्रिका) अप्रैल 2022 पृष्ट संख्या 5 भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली
5 विपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, 2018
6 धूमिल,सांसद से सड़क तक, पृष्ट संख्या (127), राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
जनगणना संबंधी जानकारी india.gov.in भारत सरकार के राष्ट्रीय पोर्टल से ली गई है।
अन्य आंकड़ों संबंधी जानकारी pib.gov.in भारत सरकार के राष्ट्रीय पोर्टल से ली गई है।

A potential medical strategy treating hypothyroidism is the combination of herbal medicine and conventional medical therapies

Ashutosh Pathak[1]*, Priya Rai[2], Nilesh Kumar Upadhyay[3]

[1]Institute of Pharmacy, Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University, Mohan Rd, Sarosa Bharosa, Lucknow, Uttar Pradesh India – 226017.
[2]Dr M. C. Saxena College of Pharmacy, 171 Barawankala, Mall Road, IIM Road, Dubagga, Lucknow, Uttar Pradesh 226101
[3]Shri Vishwanath college of pharmacy, Kalan,

Abstract-Thyroid problems are among the most prevalent and difficult endocrine illnesses that we face globally. Goitre/iodine deficiency, Hashimoto's thyroiditis, hypothyroidism, hyperthyroidism, also thyroid malignancy are among the major thyroid conditions because of its varied clinical appearance, hypothyroidism is possibly the most difficult of them to diagnose. A lack of the thyroid hormones triiodothyronine (T3) and thyroxine (T4) in the body is the cause of hypothyroidism. The condition known as mild or subclinical hypothyroidism occurs when blood thyroid-stimulating hormone (TSH) stages are slightly high but peripheral thyroid hormone equals remain outside the normal range. There is currently little information on the through investigational, pharmacologic, otherwise preclinical forms of proof that using herbal and Ayurvedic medications to treat hypothyroidism is effective. This manuscript's scope includes the effectiveness of herbal medications or traditional Ayurvedic treatments in reducing the pathophysiological symptoms of hypothyroidism.

Graphical Abstract

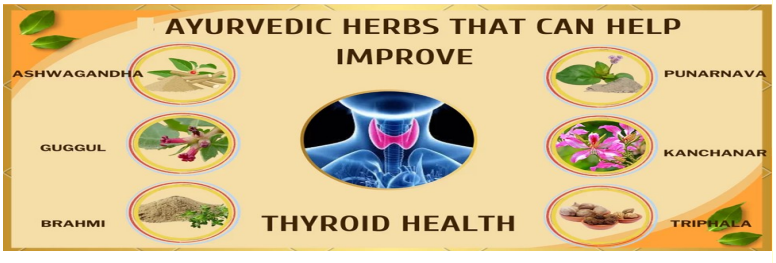

Keywords: hypothyroidism, thyrotropin, triiodothyronine T3, thyroxine T4, thyroid diseases.

Introduction

Hypothyroidism, which is caused by low thyroid hormone levels. Nearby remain two core categories of hypothyroidism: primary along with secondary (occasionally acknowledged as per essential) hypothyroidism. Thyroid hormone production is insufficient in primary hypothyroidism [1]. Hypothyroidism is caused by faulty pituitary or hypothalamic activity,